

है, जिसके मूल में संस्कृत का 'सिन्धु' शब्द है।^१ जिन्होंने वेदों की रचना की, वे निश्चय ही स्वयं को 'हिन्दू' नहीं कहते थे। विभिन्न वैदिक जनों के भिन्न-भिन्न नाम थे। उन सब नामों से ही वे अपना परिचय दिया करते।^२ किन्तु ऋक्संहिता में ही देखने में आता है कि मन्त्रकृत या मन्त्रद्रष्टा ऋषिगण स्वयं को ब्राह्मण के रूप में अभिहित कर रहे हैं।^३ फिर स्वयं को 'आर्य' भी कह रहे हैं।^४

१. वैदिक 'सिन्धु' शब्द नद की सामान्य एवं विशेष दोनों की संज्ञा है। उससे फ़ारसी : हिन्द (Pers, HIND) GREEK, INDIA, LATIN, INDIA। सिन्धुधौत देश। DARIUS निम्न सिन्धु देश का नाम, hi (n) dus (ELAMITE 'hi-in-du-is') HERODOTUS सिन्धुतीरवासियों को Indoi बतलाते हैं। HIUANTSANG (ह्वेनसाङ्ग) पूरे देश को In-tou नाम दे रहे हैं एवं उनके पूर्वपुरुषों ने chen. tou अथवा Tien-tehou बतलाया है।
२. वैदिक जनों में सबसे अग्रणी भारत जन थे। वे सरस्वती और यमुना के मध्यवर्ती भाग में निवास करते थे। कालान्तर में भरत जनों के नाम पर ही समस्त देश का नाम 'भारत' हुआ। 'भरतर्षभ' विश्वामित्र ऋषि सुविख्यात सावित्रमन्त्र के द्रष्टा थे, जिसे आज भी द्विजातियों के नित्य पाठ्य स्वाध्याय के रूप में मान्यता प्राप्त है।
३. ऋ.सं. 'चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः' १।१६४।४५; ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः '६।७५।१०'; ब्राह्मणा व्रतचारिणः, ७।१०३।१; ७, ८; ८।५८।१; १०।१६।६; ७।१८, ९, ८८।१९; ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् ९।१२ (यही वर्ण-विभाजन की सूचना); ९७।२२। अनुरूप 'ब्रह्मा' शब्द के अनेक प्रयोग प्राप्त होते हैं।
४. तुलनीय ऋ. सं. यथावशं नयति दासमार्यः (इन्द्रः) ५।३४।६; यस्यास्यं विश्व 'आर्यो' दासः शोषिषा अरिः ८।५१।९; विशेष प्रणिधान योग्य - यो नो दास आर्यो वा 'पुरुवृताऽदेव' इन्द्र युधये चिकेतति १०।३८।३; विदद् दासाय प्रतिमानमार्यः (इन्द्र) १०।१३८।३; दस्यवे हेतिमस्यार्यं स हो वर्धया द्युम्नमिन्द्र १।१०३।३; विशेष रूप से ध्यातव्य - इन्द्रः समत्सु यजमानम् 'आर्यं' प्रावत् . . . मनवे 'शासद् व्रतान' त्वचं कृष्णामरन्धयत् १।१३०।८; वेधा (विष्णुः) . . . आर्यम् ऋतस्य भागे यजमानमाभजत् १।१५६।५; विशेष रूप से ध्यातव्य-हत्वी 'दस्यून' प्रार्द्ध वर्णमावत् (इन्द्र) ३।३४।९ इन्द्रं वर्धन्तो अपतुरः (सोमाः) कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ९।६३।५; विदत् स्वरमनवे ज्योतिरार्यम् (इन्द्रः) १०।४३।४; न यो (इन्द्रः) रर आर्यं नाम दस्यवे १०।४९।३; विशेष ध्यातव्य - साह्याम् दासमार्यं त्वया युजा १०।८३।१ अयमेमि (इन्द्रः) विचाकशद् विचिन्वन् दासम् आर्यम् १०।८६।१; दासा

आर्य, ब्राह्मण एवं हिन्दू, ये तीनों संज्ञाएँ भारतीय-संस्कृति के इतिहास के तीन अध्यायों के द्योतक के रूप में मानी जा सकती हैं।

च वृत्रा हतमार्याणि च ७।८३।१; (इन्द्रः) सधमा 'आर्यस्य' (सुदासः) ७।१८।७; आर्यस्य वर्धनमग्निं ८।१०३।१ विशेष रूप से ध्यातव्य - दासस्य वा मघवन+आर्यस्य वा...यवया वधम् १०।१०२।३; ४।३०।१८; त्वं ताँ इन्द्रोभयो अमित्रान् दासा वृत्राणि+आर्या च वधीः ६।३३।३; हतो वृत्राणि+आर्यो हतो दासानि ६।६०।६; धामानि+आर्या शुक्रा ९।६३।१४; आर्याव्रता १०।६५।११, १०।६९।६; तिस्रः प्रजा आर्या (ः) ज्योतिरग्राः ७।३३।७ (तुलनीय ८।१०१।१४; विशो....आर्या १०।११।४; ६।२२।१०; २।२४।२७; १।५१।८; वैश्वानर ज्योतिर्द् 'आर्याय' १।५९।२। विशेष रूप से ध्यातव्य - अभिदस्यु वकुरेण घमन्तोरु ज्योतिश्चक्रथुर आर्याय (अश्विनौ) १।११७।२१; अपावृणोर ज्योतिर आर्याय नि सव्यतः सादिदस्युरिन्द्र २।११।१८, ४।२६।२; दस्यूरकः कृष्टीरवनारार्याय ६।१८।३; ६।२५।२; त्वं दस्युं राकसो अग्र आज उरु ज्योतिर्जनयन्नार्याय ७।५।६; तरन्तो विश्वाः स्पृघ आर्येणदस्युन् २।११।१९। लक्ष्य करने पर दिखाई देगा कि प्रायः सर्वत्र ही आर्य 'प्रजा' अथवा विश का बोधक है; वहाँ यह संज्ञा स्पष्टतया जनवाची है, जिससे सामान्य जन का बोध होता है (७।३३।७, १०।११।४; 'तिस्रः प्रजाः' अवश्य ही ब्रह्म, क्षत्र एवं विश का सूचक है; द्रष्टव्य ८।३५।१६-१८। आर्यों के साथ दस्यु एवं दास का विरोध आधिभौतिक दृष्टि से दो जन-वर्णों का है, (तुलनीय २।१२।४, ३।३४।९) अथवा इससे संस्कृति के सङ्घर्ष की सूचना मिलती है, जिसके कारण बड़ी आसानी के साथ ही यह विरोध आध्यात्मिक क्षेत्र में भी उपचरित हुआ। दास की त्वचा काली (१।१३०।८) होने के कारण वह तमः शक्ति का प्रतीक है; आर्य ज्योति के उपासक हैं, दस्यु एवं दास को पराजित करके उनके भीतर देवता ज्योति प्रकट करते हैं (१।११७।२१, २।११।१८, ७।५६; तुलनीय 'दासीर्विशः सूर्येण सहयाः' १०।१४८।२)। किन्तु दिखाई पड़ता है कि आर्य भी आर्यों के 'वृत्र' या शत्रु हैं (६।२२।१०, ३३।३, ६०।६, ७।८३।१, १०।६९।६, १०२।३)। आर्यों के साथ आर्यों का विरोध केवल भौतिक-सम्पदा को लेकर ही नहीं था, बल्कि अध्यात्म-मार्ग को लेकर भी उनमें एक विरोध था। अनेक आर्य थे, जो 'अदेव' थे, (६।१७।८, ८।५९।२) 'अनिन्द्र' थे (२।१२।५), ५।२।३, १०।४८।७)। आर्यभावना के इतिहास में यह विरोध स्थायी रूप में है, एवं द्वन्द्व के भीतर से ही एक उदात्त समन्वय की प्रेरणा सँजोता आया है। आर्य शब्द कहीं-कहीं 'अभिजात' या 'समुन्नत' अर्थ में व्यवहृत हुआ है - जैसे, 'आर्य ज्योतिः' 'आर्य धाम' 'आर्य वृत्र'।

उनमें आर्य-संस्कृति ही मूल है, जिससे कालान्तर में अन्य दो संस्कृतियों का उद्भव हुआ।

आर्य-संस्कृति निश्चय ही एक अखण्ड अथवा विशुद्ध भावना का वाहन या माध्यम नहीं थी। उसमें भी भीतर-बाहर का द्वन्द्व था एवं उससे ही उसकी प्राणशक्ति की सम्पूर्ति हुई है। आर्यों में जिन्होंने एक सुविन्यस्त साहित्य के रूप में अपनी संस्कृति का परिचय दिया है, वे वेदपन्थी थे। किन्तु वैदिक-भावना के अतिरिक्त आर्यसमुदाय में अवैदिक-भावना का भी एक महत्त्वपूर्ण स्थान था, जिसका प्रमाण वैदिक साहित्य में ही प्राप्त होता है। जो कुछ आर्य है, वही वैदिक नहीं, इसे ध्यान में रखना चाहिए; क्योंकि इसके सम्बन्ध में चिन्तन की शिथिलता अनेक क्षेत्रों में ही हमारी ऐतिहासिक दृष्टि को धुँधला कर देती है। इसके अतिरिक्त अनार्य-संस्कृति का भी प्रभाव था।

प्राचीन आर्य-संस्कृति में वैदिक, अवैदिक एवं अनार्य-इन तीन भावनाओं का सङ्घात या निविड़ संयोग था। इस घनिष्ठ मिलन को स्वीकार करके एवं अवैदिक भावना को प्रचुर मात्रा में आत्मसात् करके कालक्रम में ब्राह्मण्य-संस्कृति का उद्भव हुआ - जो मुख्यतः वेदपन्थी है। अनेक अनार्य एवं वैदेशिक भावनाओं को संशोधित, परिष्कृत करके तथा अपना बनाकर बहुत पीछे हिन्दू-संस्कृति का उद्भव हुआ। वह भी वेदपन्थी के रूप में ही अपना परिचय देती है। यद्यपि वह आज प्राचीन वैदिक-भावना से बहुत दूर सरक कर आ गई है। तब भी यह सरक आना गङ्गा की धारा का गङ्गोत्री से गङ्गासागर की ओर सरक आना है। लगता है, एक ही अविच्छिन्न धारा अनेक शाखाओं, उपशाखाओं की जलराशि से पुष्ट होकर आज 'महामानव के सागर-तट' पर आ पहुँची है।

भारतवर्ष की संस्कृति के इतिहास में यही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि मूल धारा वेद की है। वैदिक-भावना का यह आधिपत्य-बल पराये को अपना बना लेने में निहित है। यह औदार्य ही भारतवर्ष की